THE TIMES OF INDIA

Date:02-06-23

How To Be A Pal

India must be smart in managing its relations with Nepal, which is now a theatre of big power moves.

TOI Editorials

Nepal PM Prachanda's visit to India is much more consequential than most bilaterals are. This is the new leader's first foreign visit since he took Nepal's top job last December. Recall that Prachanda had made Beijing his first port of call after becoming PM for the first time in 2008. Between then and now, the India-China-Nepal equation has changed radically. With New Delhi-Beijing ties hitting a low after the 2020 Galwan clashes and Chinese incursions, Kathmandu now finds itself caught between its two giant neighbours.

Further complicating matters is the fact that Nepal is emerging as a strategic battleground between the US and China, as exemplified by Kathmandu politics over the $500 million US grant under the Millennium Challenge Corporation Nepal Compact. Nepal is also a signatory to China's BRI and Beijing has been pushing for faster implementation of projects under that initiative. Plus, the Ukraine war has made Kathmandu acutely aware of the dangers of becoming a bone of contention between big powers.

It's against this backdrop that India-Nepal relations today need to be seen. Given its geographical position, Kathmandu will naturally try to maintain close relations with both New Delhi and Beijing. New Delhi therefore needs to be smarter, and not try to micro-manage ties. The latter approach can backfire spectacularly, as it did during the 2015 blockade that had reversed all the goodwill generated by PM Modi's first visit to Nepal in 2014. Similarly, the unresolved bilateral border issue needs to be addressed through sober deliberations and not be aggravated through a war of maps.

On the economic front, India must expedite all pending projects in Nepal and stick to a needs-based development model. Prachanda's visit has seen the two sides ink seven MoUs and agreements, including a transit treaty and a pact on bilateral digital payments. There is also a long-term understanding on selling Nepal's excess power to India. All of these are welcome initiatives. But the overall relationship needs to be maintained through mutual respect. Given China's growing assertive presence in the neighbourhood, India can ill-afford to take ties with Nepal for granted.

THE ECONOMIC TIMES

Date:02-06-23

With Free Power, Great Debilitation

ET Editorials

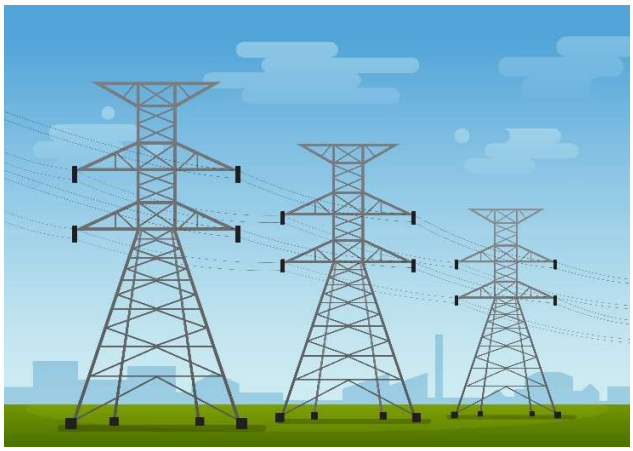

Rajasthan is the latest in the long list of states offering free electricity to people. The free power scheme has deleterious impacts on resources and economics, endangering India's goal for an energy transition towards net-zero by 2070. The practice of doling out free power to farmers has increased water stress, jeopardising agricultural incomes and sustainability. It is also literally being penny-wise and pound-foolish in action by undermining the fiscal health of electricity distribution companies (discom).

Though the Electricity Act mandates that states make upfront payments to discoms for the free electricity, this is a norm observed regularly in its breach. Free electricity schemes are capacity agnostic — all households, irrespective of their ability to pay, are beneficiaries. Studies show that the amount of free electricity offered is often in excess of median electricity consumption. It distorts demand and efficient use, and creates a barrier to key reforms such as eliminating cross-subsidy of domestic and agricultural consumers by commercial and industrial users. Thereby, electrification of the economy is actually inhibited. It reinforces perverse incentives to coal-based electricity production, disincentivising greening of electricity sources.

Electrification of the economy will require providing support to households that need it. The central government should, as recommended by the Gireesh Pradhan Expert Group on the National Electricity Policy, fix concessional tariffs (not below 50% of the discom's average cost of supply) for consumers with monthly consumption below 50 kWh and connected load up to 1kW. Instead of subsidising the discom, the subsidy should be paid as direct benefit transfer to eligibleconsumers.

दैनिक भास्कर

Date:02-06-23

किसान हित में है भंडारण विस्तार की योजना

संपादकीय

देश के हर ब्लॉक में एक अनाज स्टोर बनाने के लिए कुल एक लाख करोड़ रुपए का व्यय स्वीकृत किया गया है। केंद्र का दावा है कि इससे सहकारिता क्षेत्र में दुनिया की सबसे बड़ी भंडारण व्यवस्था भारत में होगी और कुल क्षमता 145 मिलियन टन से बढ़कर 215 मिलियन टन हो जाएगी। वर्ष 2022-23 में कुल अनाज उत्पादन 330 मिलियन न होने का अनुमान है। सरकार का यह कदम सराहनीय है। एफएओ के अनुसार भारत में एक-तिहाई खाद्यान्न खेत से बाजार तक (क्षति के रूप में) और बाजार से उपभोक्ता द्वारा खपत तक (बर्बादी के रूप में) में बेकार हो जाता है। तमाम आकलन बताते हैं कि जरूरत के मुताबिक कोल्ड चेन मात्र 10% हैं, जिसके कारण फल, सब्जी, दूध और मछली-मांस की बर्बादी भी अगर जोड़ दी जाए, तो हर साल देश में जीडीपी का एक प्रतिशत से ज्यादा समुचित भंडारण के अभाव की भेंट चढ़ जाता है। अगर ब्लॉक स्तर पर भंडार उपलब्ध होंगे तो किसान हताशा- बिक्री (डिस्ट्रेस सेल) नहीं करेगा या मौसम के कारण बर्बादी से अनाज बचाया जा सकेगा। केंद्र की पहल तो अच्छी है लेकिन इस अतिरिक्त 70 मिलियन टन भंडारण क्षमता का सृजन पांच वर्षों में होगा। इस काल में अनाज उत्पादन में वृद्धि भी करीब इतनी ही हो जाएगी। लिहाजा सरकार को इच्छा-शक्ति बढ़ानी होगी।

Date:02-06-23

आंदोलन कर रहे खिलाड़ी हमारे सम्मान के हकदार हैं

राजदीप सरदेसाई, (वरिष्ठ पत्रकार)

आज के घोर-ध्रुवीकृत माहौल में- जिसका निर्धारण बहुधा वॉट्सएप फॉरवर्ड्स के जरिए होता है- भारत के आंदोलनकारी एथलीटों को समझ आ गया है कि सराहनाएं कितनी क्षणभंगुर होती हैं। जिन लोगों ने पदक-विजेता पहलवानों को सिर-आंखों पर बैठाया था, उन्होंने ही अब उनसे किनारा कर लिया है। जिन्हें पहले नायक-नायिकाओं की तरह पूजा गया था, उन्हें ही अब 'पॉलिटिकल टूलकिट गैंग' के सदस्य बताया जा रहा है। जब वे गंगा में अपने पदक फेंक आने की बात करते हैं तो उन पर नौटंकी करने का आरोप लगाया जा रहा है। उन्हें एंटी-नेशनल तक का तमगा दे दिया गया है। यौन-उत्पीड़न जैसी समस्या को रौशनी में लाने के लिए उनकी सराहना करने के बजाय उनसे उनके आरोपों को साबित करने के लिए प्रमाण मांगे जा रहे हैं। जो विक्टिम हैं, वे ही आरोपों के घेरे में हैं, जबकि जिन पर आरोप लगाया गया है, वे आसानी से बच जा रहे हैं।

कोई भी स्ट्रीट-प्रोटेस्ट जब लम्बा खिंच जाता है तो वह देर-सबेर सत्ता से आमने-सामने की मुठभेड़ वाली स्थिति में आ जाता है। दिल्ली पुलिस नए संसद भवन के शुभारंभ अवसर पर आंदोलनकारियों को संसद तक मार्च करने की अनुमति नहीं देगी, यह भी अपेक्षित ही था। लेकिन विडम्बना यह है कि जिस पुलिस ने आंदोलनकारियों के साथ संवेदनहीन तरीके से झूमाझटकी की, वो इससे पूर्व कई महीनों तक इस मामले में एफआईआर तक दर्ज करने से आनाकानी कर रही थी, जब तक कि सुप्रीम कोर्ट ने इसके लिए उस पर दबाव नहीं बनाया। जनवरी में जब यह आंदोलन पहले-पहल शुरू हुआ था, तब मैं जंतर-मंतर पर गया था। हमारे खेल-प्रशासन का ढांचा कुछ ऐसा है कि अगर आप क्रिकेटर नहीं हैं तो अपनी आवाज बामुश्किल ही उठा सकते हैं। इसके बावजूद इन ओलिम्पियन एथलीट्स ने जिस तरह का साहस दिखाया, वह उल्लेखनीय था। जब मैंने विनेश फोगाट से पूछा कि आपने आवाज उठाने में इतना समय क्यों लगाया, तो उन्होंने कहा,

आपको अंदाजा है, यह हमारे लिए कितना कठिन है? अगर हमने यौन उत्पीड़न की बात कही होती तो हमारे पैरेंट्स हमें ट्रेनिंग करने से रोक देते और हमारी शादियां करवा देते।

यही कारण है कि हमें अपने एथलीट्स की सराहना करनी चाहिए, उलटे उन्हें भला-बुरा नहीं कहना चाहिए। फोगाट बहनों और साक्षी मलिक जैसी एथलीट साधारण नहीं हैं, वे भारतीय खेलों की दुनिया में नए मानक स्थापित करने वाली लड़कियां हैं और उनके प्रभाव का दायरा उनके अखाड़ों से कहीं दूर तक फैला हुआ है। पुरुषों की बपौती समझे जाने वाले खेल में उन्होंने अपनी पहचान बनाई है। जब कोई लड़की कुश्ती के अखाड़े में उतरती है तो वह न केवल एक परिपाटी को तोड़ रही होती है, बल्कि सदियों के पूर्वग्रह और लैंगिक विभेद को भी चुनौती देती है। उनका जीवन-संघर्ष ग्रामीण हरियाणा सहित अन्य राज्यों की लड़कियों के लिए बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ जैसे नारों से अधिक प्रेरक साबित हुआ है।

लेकिन राष्ट्रीय गौरव और लैंगिक सशक्तीकरण के प्रतीक बनने के बावजूद ये एथलीट हमारे खेल-प्रशासन में व्याप्त सत्ता के असंतुलन को चुनौती नहीं दे सके। आंदोलनकारी जिन ब्रजभूषण शरण सिंह की गिरफ्तारी की मांग कर रहे हैं, वो छह बार के सांसद और बाहुबली नेता हैं और भारतीय कुश्ती संघ पर उनका दबदबा है। उनका केंद्रीय यूपी की राजनीति में भी खासा प्रभाव है। जहां खेल-अधिकारीगण पांच सितारा सुविधाओं का उपभोग करते हैं, वहीं एथलीट्स से उम्मीद की जाती है कि वे अकसर किसी मेकशिफ्ट आवास में रहकर दूसरे दर्जे के स्टेटस को चुपचाप स्वीकार कर लें। 1978 में बैंकॉक में हुए एशियाई खेलों को याद कीजिए, जिनमें अनेक खिलाड़ियों ने एक स्थानीय गुरुद्वारे के लंगर का भोजन खाकर अपना पेट भरा था। एक अन्य अवसर पर एक खेल फेडरेशन के अधिकारी दिल्ली के आजाद मार्केट से पुरानी चादरें खरीद लाए थे, ताकि उनसे खिलाड़ियों के ट्रैकसूट बनाए जा सकें। 2010 के राष्ट्रमंडल खेलों के बाद से बहुत कुछ बदला है और ओलिम्पिक पोडियम स्कीम प्रोग्राम जैसी पहल की गई हैं। विभिन्न खेलों के खिलाड़ियों के प्रदर्शन में निखार आया है और खेलों की दुनिया में भारत का सितारा पहले से बुलंद हुआ है। लेकिन खेल के मैदान में सम्मान पाने वाले खिलाड़ी मैदान से बाहर भी हमारे उतने ही आदर और स्नेह के अधिकारी होने चाहिए। आखिर गम्भीर आरोपों पर सांसद से पूछताछ तो की ही जा सकती है। पॉस्को एक्ट के प्रावधान तो लागू किए ही जा सकते हैं। उलटे आरोपी सांसद को संसद भवन के शुभारम्भ समारोह में वीआईपी गेस्ट की तरह निमंत्रित किया गया था। ऐसे में कभी न्याय मिलेगा?

दैनिक जागरण

Date:02-06-23

लंबित मुकदमों का बोझ

संपादकीय

यह तथ्य सामने आने पर हैरानी नहीं कि देश भर के न्यायालयों में लंबित मुकदमों की संख्या साढ़े चार करोड़ पहुंच गई है। ऐसा इसलिए हुआ है, क्योंकि लंबित मुकदमों के बोझ को कम करने के लिए कोई ठोस प्रयास नहीं किए गए हैं। इसका ही परिणाम है कि एक लाख से अधिक मामले ऐसे हैं, जो तीन दशक से भी अधिक समय से लंबित हैं। इसका अर्थ है कि आवश्यकता से अधिक लंबे समय से लंबित मुकदमों को निपटाने की भी कोई पहल नहीं की जा रही है। ऐसे कुछ मामले सुप्रीम कोर्ट में भी लंबित हैं। यह ठीक है कि सुप्रीम कोर्ट लंबे समय से लंबित मामलों को निपटाने की पहल कर रहा है, लेकिन आखिर ऐसी कोई पहल उच्च न्यायालयों की ओर से क्यों नहीं की जा रही है? क्या यह उचित नहीं होगा कि उच्च न्यायालय लंबित मामलों का निपटारा कर निचली अदालतों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करें? बड़ी संख्या में मामलों का लंबित रहना 'न्याय में देरी अन्याय है' वाली उक्ति को ही चरितार्थ करता है। यह एक विडंबना ही है कि जब हर क्षेत्र में सुधार हो रहे हैं तब न्यायिक क्षेत्र में सुधार अटके से पड़े हैं। इसकी कीमत आम लोगों को ही नहीं, विकास योजनाओं और कार्यक्रमों को भी चुकानी पड़ रही है। हमारे नीति-नियंता इससे अनभिज्ञ नहीं हो सकते कि देश की प्रगति को गति देने के लिए समय पर न्याय देना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि लंबित मुकदमों को लेकर जब-तब चिंता जताई जाती रहती है। पिछले कुछ समय में तो राष्ट्रपति ने भी सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों का ध्यान मुकदमों के लंबित रहने से होने वाले दुष्परिणामों की ओर आकर्षित किया है, लेकिन नतीजा ढाक के तीन पात वाला है। यह न केवल निराशाजनक, बल्कि चिंताजनक है कि 11वें वित्त आयोग की ओर लंबित मुकदमों के निस्तारण के लिए फास्ट ट्रैक अदालतों को अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराने के बाद भी ऐसे मुकदमों के निपटारे की गति धीमी है। इसका मतलब है कि न्यायिक प्रक्रिया में ही कहीं कोई खामी है। इसका एक प्रमाण है तारीख पर तारीख का सिलसिला। न्याय समय पर न मिलने के कारण लोगों का अदालतों पर भरोसा डिग रहा है। वे मजबूरी में ही अदालतों की ओर रुख करते हैं। यह सही है कि अदालतों और न्यायाधीशों की कमी भी मुकदमों के लंबित रहने का एक कारण है, लेकिन यदि न्यायिक प्रक्रिया की खामियां दूर नहीं होतीं और मामलों को एक तय समय में निपटाने की कोई कारगर व्यवस्था नहीं बनती तो फिर न्यायालयों को संसाधन संपन्न बनाए जाने से भी बात बनने वाली नहीं है। समय आ गया है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका के लोग यह समझें कि लंबित मुकदमों के बोझ को लेकर केवल चिंता जताए जाने से कुछ होने वाला नहीं है।

Date:02-06-23

क्यों सुलग रहा है मणिपुर

दिव्य कुमार सोती, (लेखक काउंसिल आफ स्ट्रैटेजिक अफेयर्स से संबद्ध सामरिक विश्लेषक हैं)

भारत में केवल कश्मीरी हिंदू ही इकलौते नहीं, जिन्हें अपनी धार्मिक पहचान के चलते अपना सर्वस्व छोड़कर अपने ही देश में शरणार्थी बनकर रहने को विवश होना पड़ा। पिछली सदी के अंतिम दशक में ऐसे ही एक पलायन की त्रासदी ईसाई बाहुल्य मिजोरम के रियांग हिंदुओं को भी झेलनी पड़ी। रियांग हिंदुओं पर 1997 में टूटी इस त्रासदी को राष्ट्रीय विमर्श में शायद ही कोई जगह मिली हो, क्योंकि उन दिनों पूर्वोत्तर को दिल्ली में दूरस्थ अंचल की तरह देखा जाता था कि वहां कुछ न कुछ उथल-पुथल चलती ही रहती है, जिसका प्रबंधन स्थानीय दलों द्वारा जोड़तोड़ के माध्यम से किया जा सकता है। पूर्वोत्तर को अनदेखा करने का यह सिलसिला मोदी सरकार के दौर में टूटा। मोदी सरकार ने 2017 में एक राजनीतिक समझौते के अंतर्गत मिजोरम में हिंदुओं के पुनर्वास का प्रविधान किया। जो कुछ मिजोरम में रियांग हिंदुओं के साथ हुआ, कुछ वैसा ही इस समय मणिपुर में मैती समुदाय के साथ हो रहा है। मणिपुर उच्च न्यायालय द्वारा मैती समुदाय को जनजाति का दर्जा दिए जाने की मांग स्वीकार करने के बाद मैती समुदाय निशाने पर आ गया और बड़े पैमाने पर हिंसा भड़क गई। सेना की तैनाती के बाद भी करीब 35,000 से अधिक लोग विस्थापित हो गए।

कहने को तो मैती हिंदू मणिपुर में बहुसंख्यक हैं, मगर वे सिर्फ इंफाल घाटी में रहने को मजबूर हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि उन पर उनके ही प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में संपत्ति खरीदने और खेती करने आदि पर कानूनी रोक है। इन पहाड़ी इलाकों में ईसाई बन चुके कुकी और नगा रहते हैं। यानी मैती अपने ही राज्य में वैसी स्थिति से जूझ रहे हैं, जैसी स्थिति जम्मू-कश्मीर में एक समय अनुच्छेद 370 के कारण बनी रही। मणिपुर में 53 प्रतिशत जनसंख्या वाला मैती हिंदू समुदाय अपने प्रदेश के मात्र आठ प्रतिशत भूभाग में रहने को अभिशप्त है। जबकि कुकी या नगा समुदाय के इंफाल घाटी में बसने पर कोई कानूनी बंदिश नहीं। स्पष्ट है कि स्वतंत्र भारत में शासन व्यवस्था उसी अनकहे सिद्धांत पर आधारित रही कि हिंदू चाहे बहुसंख्यक हों या अल्पसंख्यक, शांति बनाए रखने के लिए सारे बलिदान उन्हें ही करने होते हैं। इसके ही परिणामस्वरूप कुकी और नगा समुदायों को तो जनजाति का दर्जा दे दिया गया, लेकिन मैती हिंदू समुदाय को जनजाति होने पर भी जनजाति का दर्जा नहीं मिला। यह तो भारत के भाग्य-विधाता ही बता सकते हैं कि ऐसा क्यों किया गया?

जिस इंफाल घाटी तक मैती समुदाय सीमित है वह लगभग 700 वर्ग मील में फैली है। जबकि मणिपुर राज्य का भाग रही काबो घाटी 7000 वर्ग मील में हुआ करती थी। ब्रिटिशकालीन नक्शों से इसकी पुष्टि होती है। अपने सामरिक हितों की पूर्ति के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी ने यह पूरा क्षेत्र 1834 में बर्मा को पट्टे पर दे दिया। इससे जुड़ी संधि में लिखा गया कि इस हस्तांतरण के बदले कंपनी प्रति वर्ष मणिपुर राज्य को एक धनराशि देगी, जो तभी बंद की जा सकेगी, यदि काबो घाटी फिर मणिपुर के पास वापस आ जाती है। अर्थात इस घाटी का मूल स्वामी मणिपुर है और इस घाटी को बर्मा से वापस भी ले सकता है। इस तथ्य को ब्रिटिश राज भी स्वीकार करता रहा। मणिपुर के भारत गणराज्य में विलय होने पर स्वाभाविक रूप से यह अधिकार भारत के पास आ गया, लेकिन 1954 में नेहरू सरकार ने बर्मा से मैत्री की खातिर इस घाटी पर भारतीय दावा छोड़ दिया। इस कारण इन घाटियों में रहते आए मैती हिंदू सीमित क्षेत्र में रहने को विवश कर दिए गए। पहाड़ी और वन क्षेत्रों को एक ही मतांतरित समुदाय के हवाले कर देने और उन्हें तमाम संवैधानिक विशेषाधिकार देने का परिणाम यह हुआ कि इन क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप और निगरानी शिथिल पड़ गई। इसके चलते मणिपुर के ये ईसाई बहुल क्षेत्र पूर्वोत्तर के विभिन्न हथियारबंद आतंकी संगठनों, अफीम की खेती करने वालों और म्यांमार से आने वाले अवैध प्रवासियों से भरते गए।

मौजूदा हिंसा की चिंगारी के मूल में केवल अदालती फैसला ही नहीं, बल्कि राज्य में बीरेन सिंह सरकार की सख्ती भी है। बीरेन सिंह सरकार ने इन पर्वतीय क्षेत्रों में अवैध प्रवासियों द्वारा वन भूमि पर किए गए अवैध कब्जों पर कार्रवाई और

अफीम की खेती पर शिकंजा कसा है। पूर्वोत्तर के आतंकी संगठनों को इनसे ही खाद-पानी मिलता रहा और उनके द्वारा ही अंतरराष्ट्रीय तस्कर नेटवर्क संचालित होता आया है। मौजूदा हिंसा में कुकी समुदाय भी निशाना बना है, लेकिन हिंसक प्रदर्शनों की शुरुआत भी इसी वर्ग के लोगों द्वारा की गई। जबकि अदालती फैसले के विरोध के लिए अन्य शांतिपूर्ण विकल्प भी अपनाए जा सकते थे। दरअसल यह मामला इसकी मिसाल है कि अब्राहमिक एकेश्वरवाद राजनीतिक सोच को किस तरह अपने समुदाय तक सीमित कर देता है। इसका जीवंत उदाहरण यह है कि राज्य के सभी कुकी विधायक, चाहे वे जिस भी पार्टी के हों, अब मणिपुर से अलग राज्य की मांग कर रहे हैं। वह भी तब जबकि राज्य में उनका ही एकाधिकार है। उनके उलट प्राचीन भारतीय सभ्यता को सहेजकर रखने वाला मैती समुदाय है, जो अपने ही क्षेत्र में हाशिये पर पहुंचाए जाने के बावजूद मणिपुर को बांटने के विरुद्ध है, क्योंकि यह वर्ग इस भूमि से भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ है।

इस पूरे विवाद के बीच चर्च अपनी रोटियां सेंकने में लगा है। ईसाई एकता के नाम पर नगालिम चर्च ने कुकी समुदाय के पक्ष में बयान जारी किया। मिजोरम के ईसाई नेता मणिपुर के विभाजन के जरिये ग्रेटर मिजोरम के सपने को पुनर्जीवित करने में लगे हैं, जिसमें ईसाई बहुल मिजो-कुकी-चिन क्षेत्र शामिल होंगे, जिससे एक वृहत्तर ईसाई प्रदेश स्थापित किया जा सके। इसीलिए म्यांमार से चिन जनजाति की भी मणिपुर में घुसपैठ कराई जा रही है ताकि जनसांख्यिकीय परिवर्तन हो सके। ऐसे में मणिपुर में हिंसा और अवैध घुसपैठ को सख्ती से काबू में करना बहुत आवश्यक है। अन्यथा पूर्वोत्तर में विभिन्न अलगाववादी समूहों से केंद्र सरकार द्वारा किए गए समझौतों पर भी खतरा मंडरा सकता है, क्योंकि ये समूह एक बार फिर से नई मांगें उठाकर हिंसा को बढ़ावा दे सकते हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date:02-06-23

जलमार्ग बने वरदान

प्रमोद भार्गव

हम जानते हैं कि काशी विश्वनाथ की नगरी वाराणसी से जल परिवहन का नया इतिहास रचा गया है। सुनहरे अक्षरों में लिखे गए इस अध्याय का श्रीगणेश प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने किया था। 5369.18 करोड़ रुपये की लागत की यह परियोजना 1383 किमी. लंबी है, जो हल्दिया से वाराणसी तक के गंगा नदी में जलमार्ग का रास्ता खोलती है। इसे राष्ट्रीय जलमार्ग-1 नाम दिया गया है।

अब यहां 1500 से 2000 टन के बड़े मालवाहक जहाजों की आवाजाही नियमित हो गई है। तीन मल्टी मॉडल टर्मिनल वाराणसी, साहिबगंज और हल्दिया में बनाए गए हैं। दो इंटर मॉडल टर्मिनल भी विकसित किए जा रहे हैं। वाराणसी में इस टर्मिनल का लोकार्पण नरेन्द्र मोदी ने कोलकाता से आए जहाज से कंटेनर उतारने की प्रक्रिया को हरी झंडी दिखाकर किया था । जहाजों को खाली करने के लिए जर्मनी से उच्चस्तरीय क्रेन आयात की गई हैं। ये मालवाहक जहाज पूर्वी

भारतीय प्रदेशों के बंदरगाहों तक आसानी से पहुंच रहे हैं। कालांतर में इस जलमार्ग से एशियाई देशों तक भी ढुलाई आसान होगी। इस जलमार्ग से सामान ढुलाई के अलावा पर्यटन उद्योग को भी बढ़ावा मिलेगा। इससे बिहार, झारखंड, प. बंगाल सहित पूर्वी एशिया तक क्रूज टूरिज्म की नई शुरुआत हो चुकी है। इससे 'नमामि गंगे' परियोजना के तहत गंगा सफाई का जो अभियान चल रहा है, उसे भी मदद मिलने लगी है।

23000 करोड़ रुपये की इस परियोजना के अंतर्गत फिलहाल 5000 करोड़ रुपये की परियोजनाएं क्रियान्वित हैं । परियोजना के पहले चरण की शुरुआत केंद्रीय सड़क एवं जहाजरानी मंत्री नितिन गडकरी ने वाराणसी के अधेरेश्वर रामघाट पर एक साथ दो जलपोतों को हरी झंडी दिखाकर हल्दिया के लिए रवाना करके की थी। साथ ही, मोक्षदायिनी गंगा नदी में जल परिवहन की ऐतिहासिक शुरुआत हो गई थी। राजग सरकार की भविष्य में नदियों पर 111 जलमार्ग विकसित करने की योजना है। दुनिया में औद्योगिक क्रांति के पहले जमाना था, जब भारत की नदियों और समुद्र में यात्री और माल परिवहन की ढुलाई करीब 90 प्रतिशत जहाजों से होती थी। ये मार्ग अंतर्देशीय तो थे ही, अंतरराष्ट्रीय भी थे। प्राचीन भारत में पांच प्रमुख जलमार्ग थे। ये स्वाभाविक रूप में प्रकृति द्वारा निर्मित थे। नदियां निरंतर बहती थीं और शहरी कचरा इनमें नहीं डाला जाता था, इसलिए ये जल से लबालब भरी रहती थीं। नतीजतन, बड़े-बड़े जलपोतों की आवाजाही निर्बाध बनी रहती थी। ये पांच मार्ग पूर्वी धरती पर गंगा और उसकी सहायक नदियों, पश्चिम भारत में नर्मदा के तटीय क्षेत्रों, दक्षिण भारत में कृष्णा और गोदावरी के तटीय इलाकों और पूर्वोत्तर भारत में ब्रह्मपुत्र और महानदी के तटीय क्षेत्रों में विकसित थे यानी संपूर्ण भारत में जलमार्गों जाल बिछा था। समुद्र में चीन, श्रीलंका, मलाबार, ईरान की खाड़ी और लाल सागर तक जलमार्ग थे। इन्हीं जलमार्गो पर भारत के बड़े नगर बसे थे। हमारे जलमार्ग दो कारणों से नष्ट हुए। एक, अंग्रेजी हुकूमत के दौरान रेल और सड़क मार्ग विकसित करने और दूसरा, अंग्रेजों ने षड्यंत्रपूर्वक भारतीय जहाजरानी उद्योग को चौपट करने की मंशा के चलते काम किया। नतीजतन, ये जल पारंपरिक मार्ग खत्म होते चले गए।

खुशी की बात है कि लुप्त हुए मार्ग और जहाजरानी उद्योग को जीवनदान मिल रहा है। अंतरराज्यीय और अंतरराष्ट्रीय, दोनों तरह के मार्ग विकसित किए जा रहे हैं। फिलहाल देश में रेलमार्गों की हिस्सेदारी महज 3.6 फीसदी है। 2018 के अंत तक इसे 7 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया था, जो पूरा हुआ। चीन में जल परिवहन की हिस्सेदारी 47 प्रतिशत, अमेरिका में 21 और कोरिया तथा जापान में 40 प्रतिशत से ज्यादा है। यदि 111 नदियों पर जलमार्ग विकसित हो जाते हैं, तो तय है कि जल परिवहन क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आएगा। अभी वाराणसी से हल्दिया तक जलमार्ग परिवहन के लिए शुरू हुआ है। इसे जल्द ही प्रयागराज और फिर कानपुर तक बढ़ा दिया जाएगा। प्रयागराज से हल्दिया तक की दूरी 1620 किमी. है। यह सबसे लंबा जलमार्ग बनेगा। यह मार्ग गंगा, भागीरथी और हुगली नदी से गुजरेगा। फिलहाल हल्दिया, फरक्का और पटना में स्थायी टर्मिनल हैं, जबकि कोलकाता, भागलपुर और प्रयागराज में फ्लोटिंग टर्मिनल हैं।

दूसरा बड़ा जलमार्ग ब्रह्मपुत्र नदी पर सादिया से असम के धुवी तक फैला है। 891 किमी. लंबा होने के कारण यह उत्तर-पूर्व का सबसे बड़ा जलमार्ग है। तीसरा बड़ा जलमार्ग केरल के कोल्लम से कोट्टापुरम तक फैला है | इसकी लंबाई 205 किमी. है। यह भारत का ऐसा जलमार्ग है, जहां भरपूर जल 12 महीने भरा रहने के कारण हमेशा नौपरिवहन होता रहता है। चौथा बड़ा जलमार्ग से पुड्डुचेरी तक है। यह गोदावरी और कृष्णा नदियों से गुजरता है। यह तमिलनाडू और आंध्र प्रदेश में आता है। पांचवा बड़ा जलमार्ग ओडिशा से पश्चिम बंगाल को जोड़ता है । यह मार्ग ब्राह्मणी नदी के पूर्वी तट पर मताई नदी और महानदी डेल्टा से गुजरता है। इसके जरिए कोयला, उर्वरक और लोहे का परिवहन होगा। छठा जलमार्ग

असम में प्रस्तावित है । यह लाखीपुरा से भंगा तक जाता है, जो बाराक नदी पर है। इस जलमार्ग से सिलचर से मिजोरम तक व्यापार बढ़ाने में मदद मिलेगी।

अंतरराष्ट्रीय जलमार्ग की दृष्टि से एक बड़ी उपलब्धि भारत और म्यांमार को जल्द मिलने वाली है। भारत सरकार द्वारा यह मार्ग विकसित किया जा रहा है। सितवे बंदरगाह से इस परियोजना को जमीन पर उतारना संभव हो पाया है। इसका फायदा लेने के लिए भारत सरकार भारत-म्यांमार के बीच सीमा पर 110 किमी. लंबी सड़क बना रही है। इस परियोजना के पूरा होने के बाद हमें न केवल व्यापारिक और रणनीतिक लाभ मिलेगा, बल्कि पूर्वोत्तर राज्यों के विकास को भी नये पंख मिल जाएंगे। याद रहे दुनिया का सबसे पहला जलमार्ग कन्याकुमारी से श्रीलंका तक भगवान श्रीराम के नेतृत्व में वानर सेना ने निर्मित किया था। इस मार्ग निर्माण का तकनीकी ज्ञान दो शिल्पकारों नल और नील ने दिया था। अमेरिका की प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था नासा ने रामसेतु के चित्र 1993 में अंतरिक्ष में स्थापित उपग्रह से लिए थे । इन तस्वीरों के अध्ययन के बाद स्थापित किया गया कि यह दुनिया का मानव-निर्मित पहला सेतु है। रामसेतु के निर्माण और उपयोग का वर्णन वाल्मीकि रामायण से लेकर संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।